कब तक अमीर देशों की कचरा-पेटी बने रहेंगे विकासशील देश

संजय कुंदन

विकसित देश एक तरफ़ पर्यावरण संकट का रोना रोते हैं और उसके लिए विकासशील देशों को ज़िम्मेदार ठहराते हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ वे ख़ुद ही विकासशील देशों में अपना कचरा फेंककर वहां पर्यावरण के लिए ख़तरा पैदा करते रहते हैं। वे कचरे के निपटान के लिए हुए तमाम अंतरराष्ट्रीय समझौते को धता बताते हैं। पिछले कुछ वर्षों से विकासशील देशों में विकसित देशों द्वारा की जा रही डंपिंग का मुद्दा दोनों के बीच तनातनी का भी कारण बन रहा है। कई बार तो इसकी वजह से उनमें टकराहट भी हो रही है। क़रीब पांच साल पहले कनाडा और फिलिपींस के बीच हुआ टकराव इसका उदाहरण है।

ग़ौरतलब है कि कनाडा ने वर्ष 2013 में रीसाइकिल्ड प्लास्टिक अपशिष्ट के नाम पर अपने घरेलू कचरे के 103 कंटेनर मनीला बंदरगाह पर भेजे थे। फिलिपींस को जल्दी ही यह अहसास हो गया कि उसे बेवकूफ़ बनाया गया है और कनाडा ने तमाम नियमों की धज्जियां उड़ाकर अपना कूड़ा उसके यहां डंप किया है। फिलिपींस ने अपनी आपत्ति दर्ज कराई लेकिन कनाडा ने ध्यान नहीं दिया। अंत में फिलिपींस ने कड़ा रुख अपनाते हुए युद्ध की धमकी दे डाली। आख़िरकार छह साल बाद कनाडा ने 69 कंटेनर वापस लिए। दिलचस्प तो यह है कि दोनों ही देश कचरे के निपटान के लिए हुए बेसल समझौते का हिस्सा हैं।

प्लास्टिक प्रदूषण के ख़िलाफ़ सक्रिय कंपनी 'क्लीनहब' ने कुछ समय पहले अपनी एक रिपोर्ट में बताया कि विश्व में प्रतिवर्ष पचास लाख टन प्लास्टिक कचरा निर्यात किया जाता है, जो मुख्य रूप से अत्यधिक विकसित देशों से किया जाता है, जो कुल वैश्विक कचरे का 71% है। इन निर्यातों के बावजूद धनी देश अपनी पर्यावरणीय ज़िम्मेदारियों को विकासशील देशों पर डाल रहे हैं, जिनके लिए उपयुक्त बुनियादी ढांचे की कमी के कारण कचरे को प्रभावी ढंग से संभालना कठिन होता है।असल में घरेलू रीसाइक्लिंग इंफ्रास्ट्रक्चर बनाने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश की ज़रूरत होती है। इसलिए शिपिंग कचरे को विकासशील देशों में भेजना अक्सर सस्ता और आसान होता है। एक अनुमान के मुताबिक अमेरिका में एक टन घरेलू कचरे के निस्तारण में औसतन जितना ख़र्च आता है, उसके आधे में वही कचरा अमेरिका खाली कंटेनरों के जरिए सुदूर ग़रीब देशों में पहुंचा देता है। एक आकलन यह भी है कि 2020 में विकसित देशों में एक टन घरेलू कूड़े के निस्तारण का ख़र्च 85 डॉलर आता था जो मात्र 35 डॉलर के भाड़े में ग़रीब देशों में भेज दिया जाता है।

प्लास्टिक कचरे को ठिकाने लगाने के इस खेल की सर्वाधिक क़ीमत वियतनाम, मलेशिया और तुर्की जैसे विकासशील देशों को चुकानी पड़ रही है – जिनमें से अधिकांश के पास कचरे के प्रवाह को प्रभावी ढंग से संभालने के लिए बुनियादी ढांचे और संसाधनों का अभाव है।

कई वर्षों तक, चीन को सबसे ज्यादा प्लास्टिक कचरा भेजा जाता था, लेकिन उसने 2018 में अपनी सीमाएं प्लास्टिक कचरे के लिए बंद कर दीं, उसके बाद से निर्यात दक्षिण पूर्व एशिया और तुर्की में स्थानांतरित हो गया है। 2022 में, यूरोपीय यूनियन ने ग़ैर यूरोपीय यूनियन के देशों को 11 लाख टन प्लास्टिक कचरा निर्यात किया। प्रतिदिन 30 लाख किलोग्राम से अधिक प्लास्टिक कचरा यूरोपीय यूनियन से निकलता है जिसका 31% तुर्की, 16% मलेशिया, 13% इंडोनेशिया और नौ प्रतिशत वियतनाम जाता है। इसके अलावा ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, जापान और अमेरिका भी ग़रीब देशों को कचरा भेज रहे हैं। लेकिन ये तो आधिकारिक आंकड़े हैं। कचरे को अवैध रूप से भी भेजा जाता है। इसके लिए बिचौलियों का उपयोग किया जाता है। कचरा उत्पादक देश इसकी निगरानी को लेकर प्रायः उदासीन रहते हैं। इसलिए अनुचित या अवैध निपटान के लिए ज़िम्मेदार लोगों की पहचान करना लगभग असंभव है।

प्लास्टिक के अलावा आज विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रॉनिक कचरे का ढेर लगता जा रहा है। उदाहरण के तौर पर घाना में यूरोप के इलेक्ट्रॉनिक कचरे का एक बड़ा हिस्सा जमा है। राजधानी अकरा में 16 वर्ग किलोमीटर में फैले इस कूड़े को 'टॉक्सिक सिटी' का नाम दिया गया है। यहां कूड़ा जलाया जा रहा है और पुराने रेफ्रिजरेटर, कंप्यूटर और टेलीविजन के पहाड़ों पर जहरीला धुआं फैल रहा है। ई-कचरा पर्यावरण और मानव सेहत के लिए घातक है। अब जैसे मोबाइल फोन को ही लें, तो कबाड़ में फेंके गए इन फोनों में इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक और विकिरण पैदा करने वाले कलपुर्जे सैकड़ों साल तक ज़मीन में स्वाभाविक रूप से घुलकर नष्ट नहीं होते। सिर्फ़ एक मोबाइल फोन की बैटरी 6 लाख लीटर पानी दूषित कर सकती है। इसके अलावा एक पर्सनल कंप्यूटर में 3.8 पौंड घातक सीसा, फास्फोरस, कैडमियम व मरकरी (पारा) जैसे तत्त्व होते हैं, जो जलाए जाने पर सीधे वातावरण में घुलते हैं और विषैले प्रभाव उत्पन्न करते हैं। कंप्यूटरों के स्क्रीन के रूप में इस्तेमाल होने वाली कैथोड रे पिक्चर टयूब जिस मात्रा में सीसा (लेड) पर्यावरण में छोड़ती है, वह भी काफ़ी नुकसानदेह है।
भारत में बेकार टायरों को डंप किया जा रहा है। ऑटोमोटिव टायर मैन्युफैक्चरर्स एसोसिएशन (एटीएमए) के मुताबिक अप्रैल से नवंबर 2023 के बीच विकसित देशों से करीब 8.8 लाख टन कबाड़ टायर भारत लाए गए जिन्हें जला दिया जाता है या फिर बाद में बाज़ार में बेच दिया जाता है, जो बेहद असुरक्षित है। ये स्क्रैप टायर मुख्यतः यूरोप से आ रहे हैं। दुनिया भर से स्क्रैप किए गए टायर/बैल्ड टायर की आड़ में, जो लाखों की संख्या में आते हैं, उनमें से कुछ (लगभग 10-15 प्रतिशत) रिप्लेसमेंट मार्केट में बेचे जाते हैं और उन्हें वाहनों में लगाया जाता है, खासकर यात्री वाहनों में। बाकी को पायरोलिसिस के लिए जला दिया जाता है, जो पर्यावरण के लिए एक बड़ी चिंता का विषय है।

पिछले कुछ समय से पुरानी कारों को भी विकासशील देशों में भेजा जा रहा है। विकसित देश खुद तो पर्यावरण-अनुकूल हाइब्रिड या इलेक्ट्रिक कारों को बढ़ावा दे रहे हैं, लेकिन पुराने या पारंपरिक वाहन ग़रीब देशों में पहुंचा दे रहे हैं। ये पारंपरिक वाहन अक्सर ख़राब गुणवत्ता वाले, असुरक्षित होते हैं और बहुत अधिक वायु प्रदूषण पैदा करते हैं। आज की तारीख़ में कई कारें उत्तरी अमेरिका, जापान, कोरिया और पश्चिमी यूरोप से अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के मुल्कों में भेजी जा रही हैं। हाल के वर्षों में पुरानी पेट्रोल और डीजल कारों का निर्यात 40% तक बढ़ गया है। अंतर्राष्ट्रीय परिवहन मंच द्वारा दिसंबर में दुबई में जलवायु सम्मेलन कॉप 28 में कहा गया कि दुनिया के लगभग एक-चौथाई लोग उन देशों में रहते हैं, जहां कम से कम आधी कारें आयातित और सेकेंड-हैंड होती हैं।

कचरे के नियंत्रण के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बेसल कन्वेंशन जैसी व्यवस्था है, जिस पर अब तक 180 से अधिक देशों द्वारा हस्ताक्षर किए जा चुके हैं। 2019 से इसमें प्लास्टिक कचरे के शिपमेंट के लिए सख़्त प्रावधान शामिल किए गए हैं। यूरोपीय यूनियन ने इनमें से कुछ नियमों को अपनाया भी है। लेकिन कुल मिलाकर ज़्यादातर देशों का रवैया ढीला-ढाला है। अमेरिका जैसा देश इसे नहीं मानता।

अमीर देश अपने असीमित संसाधनों के दोहन का फ़ायदा तो लेते हैं पर उसके दुष्परिणामों को दूसरों के मत्थे मढ़ रहे हैं। पर्यावरण संबंधी समझौतों में वे सारी जवाबदेही विकासशील देशों के ऊपर डाल देने में लगे रहते हैं। हालांकि पिछले कुछ समय से दक्षिण के देश उनकी इस प्रवृत्ति का विरोध कर रहे हैं और लामबंद भी हो रहे हैं। विकासशील देशों को इस संबंध में उन पर दबाव बनाना होगा और यह साफ़ कर देना होगा कि वे अब अमीर देशों की कचरा-पेटी बनकर नहीं रहेंगे और विश्व को प्रदूषण मुक्त रखने की ज़िम्मेदारी अकेले उनकी नहीं है।